भारतीय विदेश नीति के सिद्धांत एवं मूल तत्व

*डॉ. ललिता शर्मा

आज संचार माध्यमों की बढ़ती हुई निर्भरता के कारण विभिन्न देशों के बीच अन्तः सम्बन्धों का विकास हो रहा है। प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे पर निर्भर है उनके राष्ट्रीय हित किसी न किसी प्रकार से जुड़े हुए हैं। इन राष्ट्रों के बीच संबंधों की प्रक्रिया के स्वरूप को विदेश नीति कहते हैं।[1]

नेहरू जी ने भी भारत की विदेश नीति के सन्दर्भ में राष्ट्रीय हितों को ही प्राथमिकता दी थी चाहे वे सम्बन्ध शीतयुद्ध के पूर्व में अन्त या शीतयुद्धोत्तर ही क्यों न रहे हो।

प्रो. महेन्द्र कुमार ने लिखा है कि, ''इस आचरण के अध्ययन को मोटे तौर पर विदेश नीति की विषयवस्तु कहा जा सकता है कि प्रत्येक राज्य का व्यवहार अन्य देशों के व्यवहार को प्रभावित करता है। अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक देश अन्य देशों की गतिविधियों का अधिकतम लाभ उठाना चाहता है।''भारत साम्राज्यवाद का विरोधी रहा है।

सितम्बर 1946 में भारत में अन्तः कालीन सरकार की स्थापना के बाद से ही भारत के अन्य राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। 2 सितम्बर 1946 को राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए पं. नेहरू ने कहा ''स्वतंत्र भारत एक विश्व के लिए कार्य करेगा, एक ऐसा विश्व जिसमें स्वतंत्र लोगों का स्वतंत्र सहयोग रहेगा एवं जिसमें कोई वर्ग या समुदाय दूसरे वर्ग या समुदाय का शोषण नहीं करेगा।''[2]

17 अक्टूबर 1947 को कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए भारतीय प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने एक वक्तव्य में भारतीय विदेश नीति के मुख्य सिद्धान्तों की व्याख्या की थी। विश्व शान्ति, गुट निरपेक्षता, निःशस्त्रीकरण का समर्थन साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद व नस्लवाद का विरोध अफ्रो एशियाई एकता का आह्वान और संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों में आस्था भारतीय विदेश नीति की नींव के पत्थर समझे जा सकते हैं।[3]

पं. नेहरू जी ने नवोदित राष्ट्रों के समक्ष बड़ी समझदारी से गुटनिरपेक्ष नीति अपनाने का सुझाव रखा। क्योंकि विश्व के राष्ट्र दो विरोधी खेमों में विभाजित हो गये थे।

भारत में गुटनिरपेक्षता की नीति को स्थापित करने के प्रमुख कारणों में विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास, साम्राज्यवाद का विरोध, नस्लवाद, रंगभेद आदि की भावना का विकास करना था। उस समय भारत भी विकास के दौर से गुजर रहा था भारत दोनों गुटों की राजनीति से अलग रहकर तकनीकी व आर्थिक रूप से विकास करना था यदि भारत किसी गुट में शामिल हो जाता हो दूसरे गुट की तरफ से आर्थिक व तकनीकी सहायता नहीं ले पाता। पं. नेहरू जी ने गुट निरपेक्ष आन्दोलन के बहाने, मिश्र, कम्पूचिया, इण्डोनेशिया और युगोस्लाविया जैसे देशों से सम्बन्ध घनिष्ठ कर अफ्रोएशियाई भाईचारे और विश्व बन्धुत्व के भाव को पुष्ट किया।[4]

पंचशील

पंचशील को भारतीय विदेश नीति की आधारशिला कहा गया है। गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय जगत में किस प्रकार का आचरण किया जाये। इस प्रश्न का उत्तर भारत द्वारा पंचशील में दिया गया

है। जिसमें पंच सिद्धान्त पहला राष्ट्रवाद, दूसरा मानवतावाद, तीसरा स्वाधीनता, चौथा सामाजिक न्याय, पाँचवां ईश्वर की प्रार्थना।

पंचशील का आधार मानवीय है। वर्तमान विश्व राजनीति के सन्दर्भ में वह 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त का पालन करने हेतु एक आह्वान है। राष्ट्रों के लिए एक दूसरे के साथ आचरण के सम्बन्ध में जिन पांच सिद्धान्तों की स्थापना की गई है। उन्हें भी पंचशील की संज्ञा प्रदान की गई है।

इन्हीं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पंचशील के सिद्धान्तों का सर्वप्रथम प्रतिपादन 29 अप्रैल 1954 को तिब्बत, भारत, चीन व्यापारिक समझौते की प्रस्तावना में प्रतिपादित किया गया। ये पाँच सिद्धान्त हैं–

1. एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता व स्वतंत्रता का पारस्परिक सम्मान करना।
2. एक दूसरे पर आक्रमण न करना।
3. समानता के आधार पर एक दूसरे को लाभ पहुंचाना।
5. शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व।[5]

अप्रैल 1955 में बांडुंग सम्मेलन में इन सिद्धान्तों को विस्तृत रूप प्रदान किया गया

संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली में 14 सितम्बर 1959 को 82 राष्ट्रों ने पंचशील के सिद्धान्तों को स्वीकार किया।

शान्ति की विदेश नीति

भारतीय विदेश नीति के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए पं. नेहरू ने विश्व शान्ति को सर्वोच्च स्थान दिया। भारत की विदेश नीति सदैव ही विश्व शांति की समर्थक रही है। 12 जनवरी, 1957 को लंदन से रेडियो प्रसारण में नेहरूजी ने घोषणा की थी ''आज हमें शान्ति और सभ्य व्यवहार की आवश्यकता है हम युद्ध नहीं चाहते।''[6]

भारत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के समय नदियों के पानी पर चल रहे भारत पाकिस्तान विवाद को 1960 में सिन्धु जल संधि द्वारा हल किया। कच्छ के प्रश्न को लेकर जब 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया तो भारत ने समस्या के शान्तिपूर्ण हल के लिए त्रिसदस्यीय ट्रिब्यूनल द्वारा दिये गये निर्णय को स्वीकार कर लिया। 1966 में ताशकंद समझौते में भी भारत ने पाकिस्तान को वे क्षेत्र लौटा दिये जो भारत की सुरक्षा के लिए आवश्यक थे। 1971 के युद्ध के बाद भी भारत ने पाकिस्तान के प्रति सद्भावना का पक्ष अपनाया और 1992 में शिमला में द्विपक्षीय वार्ताओं पर बल दिया।

वर्तमान में भारत चीन के साथ भी विवादों को पारस्परिक वार्ताओं से निपटाना चाहता है। जब 1963 में आणविक परीक्षण निषेध संधि हुई तो भारत ने इस पर अविलम्ब हस्ताक्षर कर दिये भारत ने निःसंदेह 1974 व 1998 में अणुशक्ति का परीक्षण किया लेकिन शांतिमय कार्यों के लिए किया।

यथार्थवाद

विदेश नीति का प्रमुख ध्येय होता है–राष्ट्रीय हित। वर्तमान का आदर्शवाद कल का यथार्थवाद होगा। पं. नेहरू ने कहा है, ''किसी भी देश के राष्ट्रीय हितों के दो दृष्टिकोण होते हैं। पहला दूरदर्शिता पर आधारित व दूसरा तात्कालिक हितों पर आधारित।''

विदेश नीति में राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के लिए दूरदर्शी विचारों का होना आवश्यक होता है तभी राष्ट्र विकास कर सकता है। एम.एस. राजन का मानना है कि नेहरू जी की विदेश नीति आदर्शवाद व यथार्थवाद का न्यायोचित मिश्रण थी।[7]

गत्यात्मक व अनुरूपता

भारतीय विदेश नीति का सिद्धान्त केवल राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करना, राष्ट्रीय सुरक्षा स्थापित करना ही नहीं है वरन् राष्ट्रीय हितों व सुरक्षा के लिए अपनाये गये साधनों को लागू करके उनका सुचारू रूप से व्यवस्थापन करना भी है। भारत हमेशा से ही सैन्य सहायता का विरोधी रहा है। लेकिन राष्ट्रीय हितों की सहायता के लिए 1962 में युद्ध के समय अमेरिका से सैनिक सहायता लेना, 1971 के युद्ध से पूर्व भारत सोवियत मैत्री संधि करना, 1991 में शीत युद्ध के अन्त के बाद एशिया प्रशांत क्षेत्र में भारत अमेरिका सैन्य से सैन्य सम्बन्ध स्थापित करना आदि भारत के राष्ट्रीय हितों का ही परिणाम है। इससे पता चलता है कि भारत जरूरत के समय सैन्य सहायता का विरोधी नहीं रहा है। इसी कारण भारत की विदेश नीति परिवर्तित अवस्थाओं में भी ढलती रही है। भारत की विदेश नीति ने परमाणु अप्रसार मिसाइल तकनीकी रिजिम्ज व्यापारिक प्रतिबंधों सैन्य गुटबन्दियों, आर्थिक क्षेत्रीयवाद, आदि विभिन्न मुद्दों के अनुरूप बदलती परिस्थितियों में भी अपने आपको ढालने की क्षमता रखी है इसी कारण से भारत देश विदेश में अपनी छवि बनाने में अहम भूमिका निभा रहा है।

मुख्य रूप से किसी भी देश की विदेश नीति के निर्धारक तत्वों को दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. आन्तरिक तत्व
2. बाह्य तत्व

आन्तरिक तत्व

भूगोल– किसी भी देश की विदेश नीति पर उसकी भौगोलिक स्थिति आकार तथा स्वरूप का निर्णायक प्रभाव पड़ता है। भूगोल अपने आप में सहायक या विरोधी नहीं होता अपितु मानव अपने कार्यकलापों के माध्यम से इसका लाभ उठा सकता है। राष्ट्र की मुख्य घटनाएँ इससे प्रभावित होती है।[8]

भारत की भौगोलिक स्थिति ने इसे प्राचीन काल से ही आधुनिक काल तक प्रभावित किया है। वैदेशिक नीति के दृष्टिकोण से भारत की 5600 किमी. लम्बी समुद्री सीमा उसकी 13,120 किमी. लम्बी स्थलीय सीमा की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि भारत का विदेश व्यापार हिन्द महासागर के द्वारा होता है।

आर्थिक विकास–किसी भी देश की विदेश नीति में सुरक्षा व प्रभुसत्ता के बाद मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास को आगे बढ़ाना होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत का मुख्य ध्येय अपनी अर्थव्यवस्था को सुधारना था। इसके लिए भारत ने शुरू से ही नियोजित अर्थव्यवस्था को अपनाया है। परन्तु योजनाओं को चलाने के लिए जहाँ हमें प्राविधिक ज्ञान की आवश्यकता है वहां धन की आवश्यकता भी कम नहीं है। देश में गरीबी के कारण लोग धन की बचत करने में भी असमर्थ है। इसलिए अनिवार्य रूप से हमें विदेशों की सहायता पर आश्रित रहना पड़ता है।

1991 के बाद बाजार अर्थव्यवस्था में खुलेपन की नीतियों, उदारीकरण को अपनाना, बदले हुए अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश के परिणामस्वरूप ही हुआ।[9]

शीतयुद्ध के दौरान भारत की तटस्थता की नीति, विभिन्न स्रोतों से ऋण लेना, दोनों महाशक्तियों को विश्वास दिलाना कि भारत उनमें से किसी के भी विरूद्ध नहीं है ये तथ्य इस बात को इंगित करते हैं कि विदेश नीति में

व्यापार व आर्थिक महत्व काफी महत्वपूर्ण होते हैं। राष्ट्र की विदेश नीति में इन सम्बन्धों को बढ़ाना आवश्यक है। यदि द्विपक्षीय वार्ता से व्यापार सम्भव न हो तो बहुपक्षीय वार्ताओं पर निर्भर रहना चाहिए।

राजनैतिक परम्पराएं/संस्कृति–भारत की विदेश नीति पर परम्पराओं, सहिष्णुता मानवता तथा उदारता का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विकास ही हमेशा ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की धारणा पर आधारित है।

पं. नेहरू पश्चिमी लोकतंत्रवाद और साम्यवाद दोनों की ही अच्छाइयों को पसन्द करते थे ओर बुराइयों से बचना चाहते थे। पं. नेहरू साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और फासीवाद के विरोधी थे। वे सभी अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शान्तिपूर्ण समाधान करने के समर्थक थे। शीतयुद्धोत्तर युग में आर्थिक उदारीकरण की नीतियां, आर्थिक सुधार कार्यक्रम, अमेरिका के प्रति सहज दृष्टिकोण, दक्षिण पूर्व की ओर झुकाव, सीमा विवाद को परे रखकर चीन से संबंध सुधार आदि यथार्थवाद के प्रतीक स्पष्ट होते हैं। इस प्रकार भारत की विदेश नीति पर प्राचीन परम्पराओं का ही नहीं वरन राजनीतिक विचारधाराओं एवं परिस्थितियों का प्रभाव भी स्पष्ट झलकता है।

घरेलू वातावरण–घरेलू वातावरण किसी देश की विदेश नीति में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जार्ज एफ. केनन ने कहा है कि विदेश नीति कई अन्य वस्तुओं की तरह घर से ही प्रारंभ होती है।[10] यदि घरेलू परिस्थितियाँ एवं सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण सबल एवं उपयुक्त होता हो विदेश नीति का आधार भी स्वभावतः सुदृढ़ होना लगभग निश्चित होता है। समय–समय पर घरेलू परिस्थितियों के अनुरूप विदेश नीति में परिवर्तन लाने के लिए घरेलू दबाव पड़ते हैं। भारत की जनता का विदेश नीति निर्माण में अधिक योगदान नहीं रहा है। प्रेस व समाचार पत्रों पर मुख्यतः देश के बड़े–बड़े पूंजीपतियों का नियन्त्रण रहता है यदि प्रकाशित भी होता है तो उन्हें तोड़–मरोड़कर प्रकाशित किया जाता है। भारतीय सम्बन्ध में भी घरेल मामलों का शनैःशनैः अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो रहा है। जोसफ फ्रेंकले के अनुसार दो विरोधी खेमों के भीतर एक नवीन श्रेणी ने स्थान लिया है जो न तो विशुद्ध रूप से बाह्य क्षेत्रों से सम्बन्धित है और ना ही घरेलू क्षेत्रों से बल्कि वह अर्न्तमाध्यम स्थिति में है।[11] यदि शासन क्षेत्रवाद व जातीय भेदभाव से निपटने में सशक्त है तो एक ठोस विदेश नीति अपना सकता है।

भारत में संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है। इस प्रणाली के दौरान विदेश नीति के फैसले सत्ताधारी दल द्वारा लिए जाते हैं। इन फैसलों को विरोधी दल भी प्रभावित करते है। कभी–कभी तो सरकार के अल्पमत में होने के कारण तर्कसंगत निर्णयों तक नहीं पहुंच पाते हैं और विदेश नीति बीच में ही लटकती हुई नजर आती है।

सैन्य क्षमता–किसी भी देश की विदेश नीति के निर्धारण में सैन्य क्षमता का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। सभी देशों को अपनी सुरक्षा व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सैन्य क्षमता की आवश्यकता होती है क्योंकि कभी भी युद्ध या टकराव का बिगुल आपसी मतभेदों के रहते उभर जाता है। सैन्य क्षमता अपने आप में स्वतंत्र नहीं है क्योंकि सैन्य क्षमता राष्ट्र की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह इतना सम्भव नहीं है। भारत अपनी सैन्य क्षमता पर 2.5 प्रतिशत खर्च करता है वहीं पाकिस्तान 7 प्रतिशत व चीन 7–9 प्रतिशत से भी बहुत अधिक रक्षा पर व्यय करते हैं।[12]

राष्ट्रीय चरित्र–भारतीय संस्कृति विविधता में एकता का समावेश है। इसकी संस्कृति में परमात्मा, अच्छाई, बुराई, धर्म, सामाजिकता आदि में एक्यवाद पर बल दिया गया है। बंधोपाध्याय का मानना है कि नेहरू द्वारा प्रस्थापित गुटनिरपेक्षता की नीति भी इसी संस्कृति के प्रभाव का परिणाम है।[13] भारत गुटनिरपेक्षता की नीति के माध्यम से ही विश्व की अन्य विचारधाराओं में संघर्ष की समाप्ति तथा एक शान्तिपूर्ण विश्व की परिकल्पना करता है। किसी भी देश की संस्कृति के मुख्य प्रवाह से पल्लवित विचार, दृष्टिकोण, आलोचनाएँ आदि वहाँ के नीति निर्माणकर्ताओं,

राजदूतों, प्रतिनिधियों के अपने विचार, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों एवं सम्मेलनों के माध्यम से प्रकट होते हैं।

व्यक्तित्व–किसी भी देश की विदेश नीति पर उस राष्ट्र के प्रधानमंत्री तथा विदेश मंत्री का प्रभाव स्पष्ट रूप से होता है। यदि उस देश के प्रधानमंत्री की स्थिति राजनीतिक रूप से कमजोर हो तथा विदेश मंत्री अपने आप में एक महत्वपूर्ण राजनीतिक नेता हो तो विदेश नीति को काफी हद तक राष्ट्रहित में ढाल सकता है। भारतीय विदेश नीति पर पं. जवाहर लाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गांधी के व्यक्तित्व का प्रभाव है। पं. नेहरू का प्रभाव इतना सशक्त था कि विश्व में ज्यादातर जनसमुदाय भारत की विदेश नीति को नेहरू की व्यक्तिगत नीति मानते थे।

प्रधानमंत्री नेहरू के अलावा लाल बहादुर शास्त्री, राजीव गांधी, पी.वी. नरसिम्हाराव, इन्द्र कुमार गुजराल, अटल बिहारी वाजपेयी, मनमोहन सिंह व नरेन्द्र मोदी का भी भारतीय विदेश नीति में योगदान व प्रभाव रहा है।

बाह्य तत्व–

क्षेत्रीय वातावरण–किसी भी देश के निकटवर्ती क्षेत्रों के घटनाक्रम का प्रभाव सीधे तरीके से पड़ौसी देश पर पड़ता। यह बात भारत के साथ भी वैसी ही है जैसी अन्य राष्ट्रों के साथ। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारत का पड़ौसी राज्यों के साथ सीमा विवाद शुरू हो गया। भारत व पाकिस्तान धर्म व उपनिवेशवाद के कारण से भारत के ही दो अलग–अलग टुकड़े हो गये। भारत के साथ कश्मीर समस्या आज तक भी राह का कांट बनी हुई है। चीन के साथ मैकमोहन सीमा रेखा से उत्पन्न विवाद आज तक नहीं सुलझ सका। जातीय समस्या के कारण भारत श्रीलंका के संबंध ऐसे लगते हैं जैसे तमिल लोगों की समस्या व भारत व श्रीलंका के सम्बन्धों को विरासत में मिली हो। इसी प्रकार भारत व बांग्लादेश की शरणार्थी समस्या भी बरकरार है। क्षेत्रीय वातावरण के कारण से सकारात्मक कार्य भी हुए है। दक्षेस के माध्यम से आर्थिक सहयोग को बढ़ावा मिला है। इस प्रकार क्षेत्रीय वातावरण में काफी सारे मुद्दे है। जिनका समाधान भारतीय विदेश नीति के पहलुओं में बाकी है।

अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण– अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण यदि राष्ट्र की स्थितियों के अनुकूल होता है तो एक सशक्त भूमिका का निर्माण होता है और यदि इसके विपरीत होता है तो परिस्थितियाँ समाप्त प्रायः हो जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत की विदेश नीति स्वतंत्रता के पश्चात असंलग्नता या गुटनिरपेक्षता की रही। दोनों महान शक्तियां नवोदित राष्ट्रों को अपने–अपने खेमों में रखना चाहती थी लेकिन भारत स्वतंत्र रूप में दोनों महाशक्तियों से अलग रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि दोनों महाशक्तियों में भारत को शंका की दृष्टि से देखा। 1971 में परमाणु अप्रसार संधि के लागू होने तथा भारत द्वारा उस पर हस्ताक्षर न करने से आज तक भारत पर परमाणु शक्तियों के दबाव बने हुए है। शीतयुद्ध के पश्चात् विश्व विचारधाराओं के खेमें से अलग होकर यथार्थवचाद के धरातल पर आ गया। भारत के एक मात्र शक्ति से संबंध मधुर होने लगे विशेषकर पूंजी निवेश व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश से तनाव सीमा संघर्ष रेखा से परे हो गई। नई विश्व व्यवस्था में राजनीतिक मुद्दों के स्थान पर आर्थिक मुद्दों को वरीयता दी जाने लग गई। 1991 के बाद विदेश नीति 'पूर्व की और झुकाव' की हो गई जिसका पालन वर्तमान समय में श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा भी किया जा रहा है। इसके तहत जापान, ताईवान, कोरिया आदि के साथ भारतीय विदेश नीति का मुख्य आकर्षण दक्षिण पूर्व एशिया है।[14] इन देशों के साथ सम्बन्धों से भारत 1996 में 'आसियान क्षेत्रीय संघ' का हिस्सा बन गया है। 21वीं सदी में एशिया प्रशान्त क्षेत्र सामरिक व आर्थिक दृष्टि से केन्द्र बिन्दु होगा अतः भारत को इन राष्ट्रों से मित्रता सोच समझकर करनी होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय संगठन–भारतीय विदेश नीति का अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से विश्व के अन्य देशों से सीधा संबंध है। भारत की राजनीतिक परम्पराओं को यदि देखा जाए तो भारत हमेंशा एक शान्तिपूर्ण अहिंसावादी एवं समान विश्व संरचना का पक्षधर रहा है। साथ ही भारत हमेशा संयुक्त राष्ट्र का पक्षधर रहा है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र मंच

से उपनिवेशवाद, रंगभेद, जातिवाद, नवराष्ट्रों की स्वतंत्रता, प्रभुसत्ता एवं समानता की मांग को हमेशा उठाया लेकिन बड़ी ताकतों ने महत्वपूर्ण मुद्दों जैसे–नई आर्थिक विश्वव्यवस्था की स्थापना, उत्तर दक्षिण विवाद, परमाणु निःशस्त्रीकरण आदि का विरोध किया। कश्मीर समस्या के संदर्भ में भारत सीधा शिकार रहा है। कई बार तो भारत द्वारा उठाये गये महत्वपूर्ण मुद्दों हेतु दूसरी शक्ति का पिछलग्गू कहकर गहन विचार करने से इन्कार कर दिया।[15]

शीतशुद्ध के पश्चात महासभा के बजाय सुरक्षा परिषद ज्यादा महत्वपूर्ण बन गई है। बड़ी शक्तियों के हस्तक्षेप व आर्थिक व्यवस्था के सुचारू रूप से संचालित न होने के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यवाहियों में निरन्तर व्यवधान आ रहा है। संयुक्त राष्ट्र अपने अंशदान के रूप में राष्ट्रों से 52.9 बिलियन की राशि का लेनदार है।[16] किसी भी व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है जब इतनी बड़ी राशि का संयुक्त राष्ट्र लेनदार है तो हम समझ सकते हैं कि वह किस प्रकार विश्व के अन्य राष्ट्रों की सेवा करेगा। इसी के साथ जुड़ी समस्या संयुक्त राष्ट्र शांति सेना भेजने की है। शीतयुद्धोत्तर काल में इसकी संख्या बढ़ गई है तथा विकसित राष्ट्र चन्दा देने से कतरा रहे हैं।[17] वर्तमान विश्व व्यवस्था में नये–नये परिवर्तनों के कारण से नई चुनौतियां भी सामने आ रही है। भारत को भी आर्थिक दृष्टि से 'विश्व व्यापार संगठन' से उत्पन्न संकट का सामना करना पड़ेगा। भारत को विदेश नीति के अर्न्तगत सी.टी.बी.टी. व्यापक परमाणु विस्फोटक निषेध संधि का भी सामना करना पड़ेगा क्योंकि बड़ी शक्तियों के भेदभावपर्ण रवैये से संयुक्त राष्ट्र भी अछूता नहीं है। कई बार भारत द्वारा सुझाए हुए मुद्दों पर कभी अमल नहीं किया गया। इस प्रकार भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्वों व सिद्धान्तों में आन्तरिक व बाह्य तत्वों की भूमिका महत्वपूर्ण है। ये दोनों ही तत्व आपस में एक–दूसरे से चाली दामन की तरह जुड़े हुए है।

***पोस्ट डॉक्टोरल फैलो,**
आईसीएसएसआर, नई दिल्ली

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आर. एस. यादव, भारत की विदेश नीति, पीयरसन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 24
2. प्रो. बी. एम. जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर राजस्थान 2016, पृ. 882
3. ए. अयप्पादाराई व एम.एस. राजन इंडियाज फॉरेन पॉलिसी एण्ड रिलेशन्स, नई दिल्ली, 1985
4. डॉ. पुष्पेश पंत श्रीपाल जैन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध 1919 से अद्यतन मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ 2010, पृ. 397
5. प्रो. पुष्पेश पंत जी श्रीपाल जैन भारत की विदेश नीति, मीनाक्षी प्रकाशन पृ. 392
6. जे. एन. दीक्षित भारतीय विदेश नीति प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2001, पृ. 27
7. एम. एम. राजन इंडियाज फॉरेन रिलेशंस डयूरिंग नेहरू इराः सम स्टडीज नई दिल्ली 1976, पृ. XVIII
8. ई.सी. सेम्पल इन्फलयूयंसिज ऑफ ज्योग्राफिक इनवायरनमेंट लंदन 1911 तथा वर्ल्ड पॉवर एण्ड इवोलूशन न्यू हेवन 1919
9. आर. एस. यादव भारत की विदेश नीति पीयर्सन पब्लिकेशन्स, पृ. 29

10. रेनाल्डज पाद टिप्पणी सं. 1 पृ. 51–96 (अध्याय 4)

11. जोसफ फ्रेंकले द मेंकिग ऑफ फॉरेन पॉलिसी आम्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1963, पृ. 87

12. प्रो. पुष्पेश पंत भारतीय राजनय शैली और संस्कार नई दिल्ली, पृ. 1974

13. जसजीत सिंह 'डिफेडिंग इण्डिया इन द ट्वन्टी फस्ट सैन्चुरी ऑफ अफोर्डडेबिलिटी एण्ड क्रेडिबिलिटी स्ट्रेटेजिक ऐनेलिसिस वाल्यूम 19 अंक 7 अक्टूबर 1996, पृ. 97'

14. आर. एस. यादव रिसेंट चैंजिज एन एशिया एण्ड ईट्स इम्प्लीकेशन्स फोर इण्डियाज फॉरेन पॉलिसी प्रोसिडिंग्ज ऑफ द इन्टरनेशनल सिम्पोजियम ऑन आशियन स्टडीज 1992 हांगकांग 1994 पृ. 501–10

15. आर. एस. यादव भारत की विदेश नीति पियरसन पब्लिकेशन्स, पृ. 44

16. आर. एस. यादव भारत की विदेश नीति पियरसन पब्लिकेशन्स, पृ. 44

17. उदयभानू सिंह इण्डिया एण्ड आशियान रिजनल फोरम, स्ट्रेटेजिक ऐनेलिसिस वाल्यूम 19 अंक, 4 जुलाई 1996